छिन्नू जिनवरां रौ स्तवन

आर्य मेहुलप्रभसागर

कृति परिचय

प्रस्तुत कृति उपाध्याय प्रवर श्री लक्ष्मीवल्लभजी महाराज द्वारा मारुगुर्जर भाषा में निबद्ध तेरह गाथा की स्तुतिमय रचना है। लगभग सवा तीन सौ वर्ष प्राचीन व अद्यपर्यन्त प्राय: अप्रकाशित इस लघुकृति में छियानवे परमात्माओं की नामोल्लेख पूर्वक वंदना की गई है। जिनमें इस अवसर्पिणी काल के जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के आश्रयी वर्तमान श्री ऋषभदेवादिक २४ तीर्थंकर, अतीत काल के श्री केवलज्ञानी आदि २४ तीर्थंकर, अनागत काल के श्री पद्मनाभादि २४ तीर्थंकर एवं महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे विहरमान श्री सीमंधरस्वामी आदि २० तीर्थंकर तथा श्री ऋषभ-चंद्रानन आदि शाश्वत ४ जिनेश्वरों का परिगणन किया गया है। इस तरह २४+२४+२४+२०+४ =९६ तीर्थंकरों की स्तुति की गई है।

स्तवन के प्रारम्भ में सकल जिनवरों को प्रणाम कर श्रुतदेवता का ध्यान किया गया है तथा अंत में इन सभी तीर्थंकरों के नाम स्मरण के फलस्वरूप भव-भव के पाप दूर चले जाते हैं, यह बताया गया है। कलश में कर्ता ने अपने गुरुवर श्री लक्ष्मीकीर्ति उपाध्याय के चरणकमलों का मधुकर बतलाकर अपनी विनयशीलता उजागर की है।

कृति में रचना संवत् का उल्लेख नहीं है। फिर भी रचनाकार की साहित्योपासना काल उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर वि.सं. १७२१ से वि.सं. १७४७ तक का माना जा सकता है। उसी काल में इस कृति की भी रचना हुई है।

प्रस्तुत कृति में प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अनेक पदों का प्रयोग दर्शनीय है।

कर्ता परिचय

यश:पुंज तृतीय दादागुरुदेव आचार्य श्री जिनकुशलसूरि के शिष्य गौतमरास के रचयिता विनयप्रभ उपाध्याय से एक पृथक् साधु परम्परा चली जो एक स्वतंत्र शाखा न होकर मुख्य परम्परा की आज्ञानुवर्ती रही। विनयप्रभ उपाध्याय के शिष्य विजयतिलक उपाध्याय हुए। उपाध्याय क्षेमकीर्ति इन्हीं के शिष्य थे।

प्रचलित मान्यतानुसार उपाध्याय क्षेमकीर्ति ने एक साथ ५०० धावड़ी(बाराती)

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोगों को दीक्षा दी थी इसीलिए यह परम्परा 'क्षेमकीर्ति' या 'क्षेमधाड़' शाखा के नाम से जानी जाती है।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभजी महाराज ने कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका की प्रशस्ति में लिखा है-

श्रीमज्जिनादिकुशलः कुशलस्य कर्ता
गच्छे बृहत्खरतरे गुरुराड् बभूव।
शिष्यश्च तस्य सकलागमतत्त्वदर्शी
श्रीपाठकः कविवरो विनयप्रभोऽभूत् ॥१॥

विजयतिलकनामा पाठकस्तस्य शिष्यो
भुवनविदितकीर्ति वाचक क्षे मकीर्ति।
प्रचूरविहितशिष्यः प्रसृता तस्य शाखा
सकलजगति जाता क्षे मधारी ततोऽसौ ।२॥

अपने उदय से लेकर बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से पहले साधुओं के रूप में और बाद में वही यतियों के रूप में चलती रही। इस शाखा में गीतार्थ विद्वानों की लम्बी और विशाल परम्परा रही है। इसमें अनेक दिग्गज विद्वान् एवं साहित्यकार हुए हैं, जिनमें से कुछ के नामोल्लेख इस प्रकार हैं- उपाध्याय तपोरत्न, महोपाध्याय जयसोम, महोपाध्याय गुणविनय, मतिकीर्ति, उपाध्याय श्रीसार, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ, वाचक सहजकीर्ति, विनयमेरु, महाकवि जिनहर्ष, लाभवर्धन, उपाध्याय रामविजय, भुवनकीर्ति, अमरसिंधु इत्यादि। जिनके द्वारा रचित सहस्रों कृतियों से न केवल जैन साहित्य अपितु समग्र भारतीय वाङ्मय समृद्ध है।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभजी महाराज हैं। ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। इनका मूल नाम 'हेमराज' और उपनाम 'राजकवि' था। इनकी जन्म-दीक्षा आदि तिथि और स्थलों की जानकारी गवेषणीय है। संस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी तीनों भाषाओं में इन्होंने अनेक रचनायें की हैं। कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका आपकी प्रसिद्ध कृति है। साथ ही संस्कृत भाषा में कुमारसंभव महाकाव्य की टीका, उत्तराध्ययन टीका, धर्मोपदेश काव्य स्वोपज्ञ टीका, पंचकुमार कथा, जिनकुशलसूरि अष्टक सहित

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्फुटक कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

प्राकृत में चौबीस दंडक विचार कुलक उपलब्ध होता है। मारुगुर्जर रचनाओं में अभयंकर-श्रीमती चौपाई, अमरकुमार रास, भावना विलास, भर्तृहरि कृत शतकत्रय स्तबक, नेमि राजुल बारहमासा, विक्रमादित्य पंचदंड चौपाई, कृष्ण-रुक्मिणी वेली बालावबोध, संघपट्टक बालावबोध, नवतत्त्व भाषाबन्ध, वर्तमान जिन चौवीसी, बत्तीसी साहित्य, बावनी साहित्य सहित विविध स्तवनों की रचना कर इन्होंने श्रुतज्ञान की सेवा की है। वैद्यक सम्बन्धी भी दो रचनायें मिलती हैं-(१)मूत्र परीक्षा और (२) कालज्ञान।

छिन्नू जिनवरांरौ स्तवन नामक कृति खरतरगच्छ साहित्य कोश में क्रमांक ६००९ पर अंकित है।

प्रति परिचय

छिन्नू जिनवरांरौ स्तवन नामक हस्तलिखित कृति की प्रतिलिपि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर संग्रहालय से महेन्द्रसिंहजी भंसाली(अध्यक्ष, जैन ट्रस्ट, जैसलमेर) के शुभप्रयत्न से प्राप्त हुई है। एतदर्थ वे साधुवादार्ह हैं। जोधपुर में पुस्तकनुमा हस्तलिखित प्रति क्रमांक-२९८१३ में अनेक लघु-दीर्घ रचनाओं के साथ प्रस्तुत कृति पृष्ठ संख्या-१५० पर लिखी हुई है। प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर प्राय: २७ पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्ति में लगभग २० अक्षर हैं। अक्षर सुंदर व स्पष्ट हैं।

छिन्नू जिनवरांरौ स्तवन

॥ ढाल-१ ॥

॥६०॥ (ढाल-कडखानी ए देशी)

सयल जिनरायना पाय प्रणमी करी।
ध्यांन श्रुतदेवता तणो हियडै धरी
छिन्नवै जिनतणा नाम हुं भाषिसुं
विमल सद्गुरु वचन मेलि श्रुतसाषिसुं ॥१॥

वट्टमाणा जिणा इत्थ चौवीस ए
तीय काले तहा जिण तहा णागए।
विहरता वीस जिणराय वलि जाणीयै
सासता च्यारी नामेण वखाणीयै ॥२॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रिसहजिण अजित संभव अभिनंदणं
सुमति पदमप्रभुं तिम सुपासं जिनं।
चंदप्रभु सुविधि शीतलह श्रेयांस ए
वासुपूज विमल जिन अनंत सुप्रशंस ए ॥३॥
धर्मजिन शांतिजिन कुंथु अरिदेव ए
मल्लि मुणिसुव्वयं नमिजिणं सेव ए।
नेमि वलि पासजिण वीर वर्धमान ए
नमुं चौवीसजिण एह वर्तमान ए ॥४॥

॥ ढाल-२ ॥

केवलज्ञानी तिम निरवाणी ए
सागर महायश विमल वखाणी ए।
सर्वानुभूति श्रीधर दत्त देव ए
दामोदर श्रीसुतेजा सेव ए॥

(तर्ज-अष्टापदे श्री आदिजिनवर)

सेवए स्वामि मुनिसुव्रत सुमति शिवगति नाम ए
अस्ताघ जिनवर वलि नमीसर अनल जसधर साम ए
प्रणमुं कृतारथ श्री जिणेसर शुद्धमति जिन शिवकरू
स्यन्दन अने संप्रति सुनामै अतीत कालै जिनवरू ॥५॥

॥ ढाल-३ ॥

(ढाल वीर जिणेसर नी)

पदमनाभ सूरदेव सुपास स्वयंप्रभु सुनिहालि
सरवानुभूति देवश्रुती उदय देव पेढाल।
पोटिल शतकीरति रति वखाणि सुव्रत सेवीजै
अमम नि:कषाय नि:पुलाक निर्मम निरखीजइ ॥६॥
चित्रगुप्त नमीयै समाधि संवर श्रीयशोधर
विजय मल्लि जिनदेव दोइ अनंतवीर्य भद्रंकर।
एह अनागत काल हुसी चौवीस तिथंकरु
त्रिकरण वंदीजइ सदीव परतखि ए सुरतरु ॥७॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ ढाल-४ ॥

(राग-चोपई)

सीमंधर युगमंधर सामि बाहु सुबाहु नमुं सिरनांमी
श्रीसुजात देवसेन वखांणि, स्वयंप्रभु ऋषभानन वलि जाणि ॥८॥
सूरप्रभु तिम सामि विसाल, वज्रधर चंद्रानन सुनिहाल
चंद्रबाहु तिम देव भुजंग, ईसर नेमिप्रभु मनरंग ॥९॥
वीरसेन महाभद्र देवयशा, अनंतवीरय नमतां सुभदशा
विहरमान ए जिनवर वीस, भावैं प्रणमीजै निसदीस ॥१०॥
ऋषभानन चंद्रानन देव, वारिषेण व्रधमान सुसेव
ए चिहुं नामे जिन सासता, प्रणमीजै आणी आसता ॥११॥
ए च्यारे चउवीसी करी, छिन्नूं जिनवर भवजलतरी
जपतां एहना मनसुध जाप, जायै सहु भवभवना पाप ॥१२॥

कलश

इम भविय सुहकर सयल जिणवर च्यारी चउवीसी तणा
छन्नवे संख्या हुवै सहुनी नमो भो भवियण जणा
उवझाय वर श्री लक्ष्मीकीरति चरणपंकज मधुकरू
श्री लच्छीवल्लभ भाव शुद्धै जपै अहनिसि जिनवरू ॥१३॥

॥ इति छिन्नू जिनवरांरौ स्तवन समाप्तम् ॥

◈◈◈

प्राचीन साहित्य संशोधकों से अनुरोध

श्रुतसागर के इस अंक के माध्यम से प. पू. गुरुभगवन्तों तथा अप्रकाशित कृतियों के ऊपर संशोधन, सम्पादन करनेवाले सभी विद्वानों से निवेदन है कि आप जिस अप्रकाशित कृति का संशोधन, सम्पादन कर रहे हैं या किसी पूर्वप्रकाशित कृति का संशोधनपूर्वक पुनः प्रकाशन रहे हैं अथवा महत्त्वपूर्ण कृति का अनुवाद या नवसर्जन कर रहे हैं, तो कृपया उसकी सूचना हमें भिजवाएँ, इसे हम श्रुतसागर के माध्यम से सभी विद्वानों तक पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे, जिससे समाज को यह ज्ञात हो सके कि किस कृति का सम्पादन कार्य कौन से विद्वान कर रहे हैं? यदि अन्य कोई विद्वान समान कृति पर कार्य कर रहे हों तो वे वैसा न कर अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियों का सम्पादन कर सकेंगे.

निवेदक- सम्पादक (श्रुतसागर)

For Private and Personal Use Only